तेरा हार

तेरा हार

रचयिता

'बच्चन'

— o —

सम्पादक

मुन्शी कन्हैया लाल, एम० ए०, एल-एल० बी०

— o —

प्रकाशक

रामनारायण लाल

पब्लिशर और बुकसेलर

इलाहाबाद

१९३२

मङ्गलारम्भ

मङ्गलारम्भ

प्रियतम, मैने बनने को तेरी सुन्दर ग्रीवा का हार
ललित बहिन सी कलियाँ छोड़ीं,
भाई से पल्लव सुकुमार,
साथ खेलते फूल, खेलती—
साथ तितलियाँ विविध प्रकार।
गोद-खेलाते हुए पिता से
पौधे का मृदु स्नेह अपार,
माता-सी प्यारी क्यारी का
सहज, सलोना, सरल दुलार,
बाल्य सुलभ चाञ्चल्य, चपलता
छोड़ी, बँधी नियम के तार,
छोड़ा निज क्रीडा शुभस्थली
शुभ्र वाटिका का घर द्वार,
प्रियतम, बतला दे आकर्षक है क्यों इतना तेरा प्यार ?

—जीवन सहचरी

उपक्रमणिका

उपक्रमणिका

उपक्रमणिका

उपक्रमणिका

सम्बोधन

सम्बोधन

१—"बुलाऊँ क्यो मैं तुम्हें पुकार ?
जान ले क्यो सारा ससार ?

तुम्हें इन कलियों का मधु वास
खींच लाएगा मेरे पास ।

२—रहें हम तुम जब केवल साथ
पिन्हा दूँ 'हार' तुम्हें चुप चाप,

न पाए हम दोनों का प्यार
कभी शकालु विश्व में व्याप ।"

मेरी सजीव कविते !

तुझे वह दिन तो याद ही होगा जब तूने स्वय अपने लिए यह विशेषण ले लिया था। तूने मेरे हृदय की बात कह दी थी। मै स्वय तुझे अ दर से यही मान रहा था, पर तेरे भय से उसे बाहर न लाता था। तू यह कैसे जान गई ! मालूम होता है तूने मेरे साथ विश्वास घात किया। मै ने तुझे अपने हृदय मन्दिर मे यह सोचकर ला रक्खा था कि तू वहाँ एक आदर्श प्रतिमा के समान बिना हिले डुले बैठी रहेगी, पर मालूम होता है कि जब मै भावनाओ के उन्माद में अपने हृदय की सुध-बुध भूल जाता हूँ तब तू अपने सिहासन से उठ कर मेरे हृदय की अन्य कोठरियो की तलाशी लेने लगती है !

और अब तू इतनी ढीठ हो गइ है कि तेरी तृप्ति मेरे चढ़ाए फूलो से ही नहीं होती। तू अब मेरे हृदयोद्यान मे बेखटके चली जाती है और वहाँ जितनी कलियाँ अपने योग्य समझती है मेरी ओर से अपने को समर्पित कर लेती है। पर देख, फिर भी मै तेरी पूजा की ओर से निश्चिन्त नहीं हूँ। आज, जब तेरा 'जन्म दिवस' है, मै भी एक हार गूँध कर तैयार हूँ, लेकिन, तुझे इसे समपण करने के लिए न मै अनुनय विनय करना चाहता हूँ और न तू ही इसे लेने मे इन्कार अन्दाज दिखलाना चाहेगी। वे तो तूने जब तेरे वे दिखलाने के दिन थे तब भी न दिखलाए, और मेरे दिल मे यह अरमान रह ही गया कि एक दिन मै हार लेकर तेरे पीछे पीछे दौडता फिरता और तू 'नहीं' 'नही' की झडी लगाती हुइ मुझसे दूर दूर भागती।

इसके प्रतिकूल, मुझे तो अपना हार गूँधते समय सदा इस बात का डर लगा रहता था, कि कहीं तुझे इसका पता न लग जाय और यह अधगुँधा हार इस 'शुभ-अवसर' के आने से पहले ही मेरे हाथो से छिन

कर तेरे गले मे न पहुँच जाय। कुछ याद है कितनी बार जब मैंने हार गूँधने के लिए कली उठाइ, तू मेरे हाथो से उसे छीन कर चम्पत हो गई ? खैर, अब यह पूरा बन गया है और तू इसे ले ही लेगी। इसी से मैंने इस हार का नाम ही 'तेरा हार' रक्खा है, और इसका आरम्भ 'समपरा' से न कर के 'स्वीकृत' से करने की धृष्टता की है। क्षमा करना।

इसकी कलियाँ मुझे अभी निर्जीव मालूम होती हैं। पर, मुझे पूरा विश्वास है कि तेरे सजीव स्पर्श से इनमे जीवन आएगा। जीवन ही क्यो—अमरता आएगी। मेरा हार उन अभागे फूलो का नहीं बना जिन्हें क्रूर काल दो ही घडी मे सुखा कर प्रेमियों को उसे उतार फेंकने के लिए विवश करता है। मेरे हार के फूलो का मुर्झाना तो तब आरम्भ होगा जब तू उसे अपने गले से उतार कर फेंक देगी, पर उसके पहले नहीं। क्या तू कभी ऐसा करेगी ?

अपना हार तुझे पहनाने के साथ ही तुझसे एक बात कह देना चाहता हूँ—मानेगी ? सुन, चञ्चले ! मेरे

इस हार को औरों को दिखाती न फिरना। इन कलियों को मधुर स्मृति मय सुगन्ध को समझने वाले केवल दो ही व्यक्ति हैं—एक तो, मेरी तू—मेरी कविता, और एक, तेरा मै—तेरा कवि । 'तेरा कवि,' क्योकि मै समझता हूँ कि ससार में मुझे अपने का कवि कहलाने की योग्यता नहीं है । यदि मै ऐसा दावा करूँगा तो वह मुझ पर हँसेगा। वह तो मुझे 'तेरा कवि' कहलाने पर भी हँसेगा। पर इस उपाधि को (और यह भी तो तेरी ही दी हुई है न ?) तो मै उसके भय से नहीं छोड़ सकता। वह मुझ पर हँसे और खूब हँसे। मुझे इसका कोई दु ख नहीं है, क्योकि मेरे सर यह कोइ नई बला नहीं। ससार हमेशा से ही मुझ पर हँसता आया है। उससे केवल मै इतना ही चाहता हूँ कि यदि वह कभी मुझे तुझे साथ देख ले तो तेरे प्रति मेरे प्रेम, अनुराग, भक्ति के अनोखे, निराले, अन्य—सम्बन्ध, लगाव, नाते (कोई शब्द मेरी भावनाओ को सन्तुष्ट ही नहीं करता !) को शंकित दृष्टि से न देखे—बस। आशीर्वाद और शुभ कामना की दो दो पंक्तियाँ और—और समाप्ति— मेरे अपराध तो तेरे समीप सदा क्षम्य हैं ही । अच्छा,—

३—"तुम्हारी ग्रीवा मे सुकुमार,
सुशोभित हो यह मेरा हार,
खिले कलियो—सा मन सुकुमार
हमारा तुम्हें निहार निहार !!"

'कृष्ण कुञ्ज,' प्रयाग
२०—१—३२

तेरा कौन ?
वही जो तेरा हूँ।

स्वीकृत

स्वीकृत

(१)

घर से यह सोच उठी थी
उपहार उन्हें मै दूँगी,
करके प्रसन्न मन उनका
उनके शुभ आशिष लूँगी।

(२)

पर जब उनकी वह प्रतिभा
नयनो से देखी जाकर,
तब छिपा लिया अञ्चल मे
उपहार हार सकुचा कर।

(३)

मैले कपडो के भीतर
तण्डुल जिसने पहचाने,
वह हार छिपाया मेरा
रहता कब तक अनजाने ?

(४)

मै लज्जित मूक खडी थी,
प्रभु ने मुस्करा बुलाया,
फिर खड़े सामने मेरे
होकर निज शीश झुकाया !

आशे ।

आशे !

(१)

भूल तब जाता दुःख अनन्त,
निराशा पतझड़ का हो अन्त
हृदय मे छाता पुन वसन्त,
    दमक उठता मेरा मुख म्लान,
    देवि ! जब करता तेरा ध्यान ।

(२)

पथिक जो बैठा हिम्मत हार,
जिसे लगता था जीवन भार,
कमर कसता होता तैयार,
    पुन उठता करता प्रस्थान,
    देवि ! जब करता तेरा ध्यान ।

(३)

डूबते पा जाता आधार,
सरस होता जीवन निस्सार,
सार मय फिर होता ससार,
सरल हो जाते कार्य्य महान,
देवि ! जब करता तेरा ध्यान।

(४)

शक्ति का फिर होता सञ्चार,
सूझ पडता फिर कुछ-कुछ पार,
हाथ मे फिर लेता पतवार,
पुन खेता जीवन जल यान,
देवि ! जब करता तेरा ध्यान।

नैराश्य

नैराश्य

(१)

निशा व्यतीत हो चुकी कब की !
सूर्य्य किरण कब फूटी !
चहल—पहल हो उठी जगत में,
नींद न तेरी टूटी !

(२)

उठा उठा कर हार गई मै,
आँख न तूने खोली,
क्या तेरे जीवन अभिनय की
सारी लीला हो ली ?

(३)

जीवन का तो चिन्ह यही है
सो कर फिर जग जाना,
क्या अनन्त निद्रा मे सोना
नहीं मृत्यु का आना?

(४)

तुझे न उठता देख मुझे है
बार बार भ्रम होता—
क्या मै कोई मृत शरीर को
समझ रही हूँ सोता!

कोर

कीर

(१)

" कीर ! तू क्यों बैठा मन मार,
शोक बन कर साकार,
शिथिल तन मग्न विचार ?
आकर तुझ पर टूट पड़ा है किस चिन्ता का भार ? "

(२)

इसे सुन पक्षी पख पसार,
तीलियों पर पर मार,
हार बैठा लाचार,
पिंजड़े के तारों से निकली मानो यह झङ्कार—

(३)

" कहाँ वन वन स्वच्छन्द विहार !
कहाँ बन्दी-गृह द्वार ! "
मह्य यह अत्याचार—
एक दूसरे का ले लेना 'जन्म सिद्ध अधिकार' !

झण्डा

झण्डा

(१)

हृदय हमारा करके गद्गद
भाव अनेक उठाता है,
उच्च हमारा होकर झण्डा
जब 'फर-फर' फहराता है!

(२)

अहे! नहीं फहराता झण्डा
वायु वेग से चञ्चल हो,
हमे बुलाती है माँ भारत
हिला हिला कर अञ्चल को!

(३)

आओ युवको, चलें सुनें क्या
माता हमसे कहती आज।
हाथ हमारे है रखना माँ
भारत के अञ्चल की लाज।

वन्दी

वन्दी

(१)

" पड़े वन्दी क्यों कारागार ?
चले तुम कौन कुचाल ?
चुराया किसका माल ?
छीना क्या किसका जिस पर था तुम्हें नहीं अधिकार ?"

(२)

" न था मन में कोई कुविचार,
न थी दौलत की चाह,
न थी धन की परवाह,
था अपराध हमारा केवल किया देश का प्यार !

(३)

शीश पर मातृ भूमि-ऋण भार,

उसे हूँ रहा उतार।

देशहित कारागार—

कारागार नहीं, वह तो है स्वतन्त्रता का द्वार !"

वन्दी मित्र

वन्दी मित्र

(१)

जेल कोठरी के मैं द्वार
वन्दी ! तुझसे मिलने आया,
नतमस्तक मन में शर्माया,
मित्र ! मित्रता का मुझसे कुछ निभ न सका व्यवहार ।

(२)

कैसे आता तेरे साथ ?
देश भक्ति करने का अवसर,
बड़े भाग्य से मिले मित्रवर !
मेरी किस्मत मे वह कैसे लिखते विधि के हाथ !

(३)

मित्र ! तुम्हारे मगल भाल
अकित है स्वतन्त्र नित रहना,
मेरे, व न्दी गृह दुख सहना,
"मै स्वतन्त्र ! तू वन्दी ! कैसे ?"—तेरा ठीक सवाल।

(४)

मित्र ! नहीं क्या यह अविवाद ?
स्वतन्त्र ही स्वतन्त्रता खोता,
वन्दी कभी न व न्दी होता,
अपने को वन्दी कर सकते जो स्वतन्त्र आजाद।

(५)

कम न देश का मुझको प्यार।
साथ तुम्हारा मै भी देता,
अग अग यदि जकड न लेता,
मेरा, प्यारे मित्र ! जगत का काला कारागार।

कोयल

कोयल

(१)

अहे ! कोयल की पहली कूक !
अचानक उसका पड़ना बोल,
हृदय मे मधु रस देना घोल,
श्रवणो का उत्सुक होना, बनना जिह्वा का मूक ।

(२)

कूक ? कोयल ! या कोई मन्त्र ?
फूक जो तू आमोद प्रमोद,
भरेगी वसुन्धरा की गोद,
काया कल्प क्रिया करने का ज्ञात तुझे क्या तन्त्र ?

(३)

बदल अब प्रकृति पुराना ठाट
करेगी नया नया शृङ्गार,
सजाकर निज तन विविधप्रकार
देखेगी ऋतुपति प्रियतम के शुभागमन की बाट।

(४)

करेगा आकर मन्द समीर
बाल पल्लव अधरों से बात
ढकेंगी तरुवर गण के गात,
नई पत्तियाँ पहना उनको हरी सुकोमल चीर।

(५)

वसन्ती, पीले, नीले, लाल,
बैंगनी आदि रग के फूल,
फूल कर गुच्छ गुच्छ मे झूल,
झूमेंगे तरुवर शाखा मे वायु हिंडोले डाल।

(६)

मक्खियाँ कृपणा होंगी मग्न
माँग सुमनो से रस का दान,
सुना उनको निज गुन गुन गान,
मधु सञ्चय करने मे होंगी तन मन से सलग्न।

(७)

नयन खोले सर कमल समान
घनी वन का देखेंगे रूप—
युगुल जोडी की सुछवि अनूप,
उन कञ्जो पर होंगे भ्रमरों के नर्तन गुञ्जान।

(८)

बहेगा सरिता में जल श्वेत,
समुज्ज्वल दर्पण के अनुरूप,
देख कर जिसमे अपना रूप,
पीत कुसुम की चादर ओढ़ेंगे सरसों के खेत।

(९)

कुसम दल से पराग को छीन,
चुरा खिलती कलियो की गन्ध,
कराएगा उनका गॅठ ब-ध,
पवन पुरोहित ग-ध सुरज से रज सुग-ध से भीन।

(१०)

फिरेंगे पशु जोड़े ले सग,
सग अज शावक, बाल कुरग,
फड़कते हैं जिनके प्रत्यङ्ग,
पर्वत की चट्टानो पर कुद्केंगे भरे उमग।

(११)

पक्षियो के सुन राग कलाप—
प्राकृतिक नाद, ग्राम, सुर, ताल,
शुष्क पड जाएँगे तत्काल,
ग-धर्वों के वाद्य यन्त्र किन्नर के मधुर अलाप।

(१२)

इन्द्र अपना इन्द्रासन त्याग,
अखाड़े अपने करके बन्द,
परम उत्सुक मन दौड़ अमन्द,
खोलेगा सुनने को नन्दन द्वार भूमि का राग !

(१३)

करेगी मत्त मयूरी नृत्य
अन्य विहगों का सुन कर गान,
देख यह सुर पति लेगा मान,
परियों के नर्तन हैं केवल आडम्बर के कृत्य !

(१४)

अहे ! फिर 'कुऊ' पूर्ण आवेश !
सुना कर तू ऋतुपति सन्देश,
लगी दिखलाने उसका वेश,
क्षणिक कल्पने ! मुझे घुमाए तूने कितने देश !

(१५)

कोकिले ! पर यह तेरा राग
हमारे नग्न बुभुक्षित देश,
के लिए लाया क्या सन्देश ?
साथ प्रकृति के बदलेगा इस दीन देश का भाग ?

मध्यान्ह

(२)

अहे ! वह सुखद प्रभाती गान,
लगीं तप्त किरणें जब आने,
लगा पवन जब धूलि उड़ाने,
मध्य-दिवस में हाय ! हाय ! हो गया कहाँ लयमान ?

ले गया राग पुंज हर कौन ?
किसके मन में पाप समाया ?
किसे न औरों का सुख भाया ?
बिठा दिया रागिनी प्रकृति को किसने कर के मौन ?

(३)

प्रकृति ! तुम्हारे भी आनन्द
क्षणिक मनुष्यों के-से होते ?
पल में आते पल में खोते ?
कर्म्म-चक्र में मानव आते ,

घाम न होता रात न आती,
जहाँ सदा ही सन्ध्या छाती,
भूख जहाँ पर नहीं सताती,
प्यास नहीं है लगने पाती,
जहाँ न मृत्यु-जन्म का नाम,
जहाँ नहीं जीवन संग्राम,
जहाँ न कोई करता द्वेष,
जहाँ नहीं भय का लवलेश,
अगणित खग सर्वदा चहकते,
चोंच नहीं पर उनके थकते,
उत्कण्ठित स्वर से है गाना जहाँ काम बस एक !

(५)

सुनूँ न फिर मैं क्यों कलरोर ?
आह ! भेद मैंने अब पाया—
बहरा अपना कान बनाया
भय-अशान्ति मय मचा मचाकर हमने ही तो शोर !

(३)

या सुमनो मे शिशु सुकुमार ,
जो सुगन्ध का अब तक सोया,
रजनी के स्वप्नों में खोया,
उसे जगाते धीमे धीमे कर के चुम्बन-प्यार ?

(४)

या तुम शशि किरणो के तार
से जो हाथ उन्हें चुम्बन कर
और सितारों का प्रकाश घर
चूम-चूम सस्नेह विदा करते हो, अन्तिम बार ?

(५)

या तुम बाल सूर्य्य के हाथ ,
स्वर्ण रग में गए रँगाए,
गए तुम्हारी ओर बढ़ाए,
करते हो आभूषित अपने रजत-चुम्बनों साथ ?

चुम्बन

(१)

ऐ छोटे विहग सुकुमार !

तेरे कोमल चंचु अधर से

निकल रहे स्नेहाप्लुत स्वर से

लगता, कोई करे किसी को निर्भय चुम्बन प्यार।

(२)

किसको करते चुम्बन प्यार ?

क्या मानव आँखों से देखी

गई न बुद्धि-चक्षु अवरेखी

उसको ऊषा काल बहे जो शीतल मंद बयार ?

(३)

या सुमनो में शिशु सुकुमार ,
जो सुगन्ध का अब तक सोया,
रजनी के स्वप्नों में खोया,
उसे जगाते धीमे धीमे कर के चुम्बन-प्यार ?

(४)

या तुम शशि किरणो के तार
से जो हाथ उन्हें चुम्बन कर
और सितारों का प्रकाश धर
चूम चूम सस्नेह विदा करते हो, अन्तिम बार ?

(५)

या तुम बाल सूर्य्य के हाथ ,
स्वर्ण रग मे गए रँगाए,
गए तुम्हारी ओर बढ़ाए,
करते हो आभूषित अपने रजत-चुम्बनों साथ ?

(६)

या तुम उस चुम्बन का, तात !
पाठ याद करते उठ भोर,
जिसे लिटा अञ्चल पर क्रोड़
अपने तुमको, मातृ विहगिनि ने सिखलाया रात !

(७)

या तुम वह चुम्बन प्रति भोर
उठ कर याद किया करते हो,
(मुझे बताते क्यों डरते हो ?)
जिससे तुम्हें किसी ने भेजा जीवन के इस ओर ?

(८)

तब की तो है मुझे न याद,
पर अतीत जीवन के चुम्बन
कितने चमका करें हृद्गगन !
जिनकी मूकस्मृति मेरे मन भरती मधुर विषाद !

(६)

यदि न जगत के धंधे फंद
होते, मानस-गगन घूमता,
प्रति चुम्बन को पुन चूमता,
सदा बना मै तुझ सा रहता एक विहँग स्वच्छन्द !

मधुकर

मधुकर

(१)

उमड घुमड काले काले
  बादल का नभ मे घिर आना,
    रिम झिम रिम-झिम करके अवनी-
      तल पर पानी बरसाना।

(२)

सिमिट सिमिट कर एक
  सरोवर मे जल का जा भरजाना।
    मन्द पवन के झोकों से
      लहरों का उस पर लहराना।

(३)

कंज-कली का झाँक झाँक
जल के बाहर, भीतर जाना।
किसी व्यक्ति को देख न बाहर।
सहसा शिर ऊपर लाना।

(४)

लोक लाज के कारण मुँह पर
डाल हरा घूँघट आना।
चपल तरगों की संगति से
पर उच्छृङ्खल बन जाना।

(५)

घूँघट हटा देख सर दर्पण
में मुख अपना मुस्काना।
सूर्य्य देव का उसके अधरों
तक अपना कर फैलाना।

(६)

मन्द समीरो का आ आ कर
मीठे धक्के दे जाना।
विहँसित होना कंज कली का
फूली फूली न समाना।

(७)

करने को रस पान कली का
तब फिर मधुकर का आना।
छूते ही रस की मदिरा
उसका मतवाला हो जाना।

(८)

दिन भर मँडरा मँडरा रस
पीना, पी पी रस मँडराना।
अब हो [illegible]कित शान्त हो
[illegible] ।

(९)

आँख ऊपरी मुँद जाना
भावना-नयन का खुल जाना।
स्वप्न-देव का उस पर
स्वप्नो का बुनना ताना बाना।

(१०)

सकल विश्व का पिघल पिघल कर
एक सरोवर बन जाना!
जग का सब सौन्दर्य्य सिमट कर
कली रूप उस पर आना!

(११)

सब कवियो के मन का मिलकर
एक सुमधुकर हो जाना!
इस नर-कलिका की सुषमा का
गुन गुन कर के गुण गाना!

(९)

आँख ऊपरी मुँद जाना
भावना-नयन का खुल जाना।
स्वप्न-देव का उस पर
स्वप्नों का बुनना ताना बाना।

(१०)

सकल विश्व का पिघल पिघल कर
एक सरोवर बन जाना!
जग का सब सौन्दर्य्य सिमट कर
कली रूप उस पर आना!

(१२)

मधुकर का यह गान श्रवण कर
बार बार पुलकित होना।
तन की सुध रस से खोई थी
मन की सुध स्वर से खोना।

(१३)

सन्ध्या का होना रवि का
अस्ताचल को जा छिप जाना।
कमल दलों को संकुचित करने
वाली रजनी का आना।

(१४)

कोमल कमल दलों में रहना
मधुकर का कोमल-तम तन।
दुसह वेदना, सह उसका

(१५)

सुख मय दृश्य दिखाकर उसका
अन्त दुःख मय दिखलाना।
मधुकर के जीवन हरने का
सब सामान किया जाना!

(१६)

इसी लिए सौन्दर्य्य देख कर
शंका यह उठती तत्काल—
कहीं फँसाने को तो मेरे
नहीं बिछाया जाता जाल?

(१७)

ऐसी शंकाओं में फँसता
है क्यों? बतला, मानव मन्द!
हर सुन्दरता में तुझको
अनुभव करना था परमानन्द।

(१८)

सुख दुख क्या है? हृदय-भावना—
जिसने है जैसा माना।
मधुकर ने अपने मरने को
था अनन्त सुख मय जाना!

दुख में

दुख में

(१)

" पड़ी दुखों की तुझ पर मार ?

दुखों में सुख भरा जान तू,

रो रो कर मुख न कर म्लान तू,

हँस, हँस, हलका हो जाएगा तेरे दुख का भार ।

(२)

निज बल पर जिनको अभिमान

संकट में साहस दिखलाते,

दुखो को हैं दूर हटाते

दुख पड़ने पर जो हँसते हैं वही वीर बलवान" ।

(३)

" मिले मुझे दुख लाखों बार,
पर, दुख मे सुख सार समाया—
व्यंग, समझ मैं कभी न पाया ।
सुख मे हँसूँ, दुखों मे रोऊँ—सीधा सा व्यवहार ।

(४)

कोमल से कोमल भी शूल
जब जब है तन मेरे गडता,
बच्चों सा मै हूँ रो पड़ता,
कॉटों को मै कभी न अब तक समझ सका हूँ फूल ।

(५)

एक नियम जीवन मे पाल
रहा सदा से हूँ मै अविचल,
कोई कहे बली या निर्बल,
उन्हें चुभा रहने देता हूँ, देता नहीं निकाल !"

दुखों का स्वागत

दुखो का स्वागत

(१)

नदियाँ नीर भरें जलनिधि मे
जो जल राशि अघाए।
शुष्क, जल रहित मरुस्थली को
दिनकर और तपाए।

(२)

हृष्ट-पुष्ट नित स्वस्थ रहे, कृश
क्षीण रुग्न हो जाए,
लक्ष्मी के मन्दिर में स्वागत
धनी महाजन पाए।

(३)

अन्धकार अन्धों को मिलता,
उसे नयन जा पाए
ज्योति मिले, यह नियम जगत का
सम समान को धाए।

(४)

प्यार पास जाए प्यारों के,
सुख सुखियों पर छाए,
आशिष आशिष वालों पर, मुझ
दुखिया पर दुख आए!

आदर्श प्रेम

आदर्श प्रेम

(१)

प्यार किसी को करना, लेकिन—
कह कर उसे बताना क्या ?
अपने को अर्पण करना पर—
औरो को अपनाना क्या ?

(२)

गुण का ग्राहक बनना, लेकिन—
गा कर उसे सुनाना क्या ?
मन के कल्पित भावों से
औरो को भ्रम में लाना क्या ?

(३)

ले लेना सुगन्ध सुमनों की,
तोड़ उन्हें मुरझाना क्या ?
प्रेम हार पहनाना, लेकिन—
प्रेम पाश फैलाना क्या ?

(४)

त्याग—अंक मे पलें प्रेम शिशु
उनमे स्वार्थ बताना क्या ?
दे कर हृदय हृदय पाने की
आशा व्यर्थ लगाना क्या ?

तुमसे

तुमसे

(१)

नहीं चाहता तुलसी दल बन
शीश तुम्हारे चढ़ पाऊँ,
नहीं, हार की कलियाँ बन कर
गले तुम्हारे पड जाऊँ।

(२)

नहीं, भुजाओं मे रख तुमको
इन हाथों को करूँ पवित्र,
नहीं, हृदय के अन्दर बन्दी
कर के रखूँ

(३)

नहीं चाहता दिखलाने को
तव भक्तों का वेश धरूँ,
नहीं, सखा बन सदा तुम्हारे
दाएँ बाएँ फिरा करूँ।

(४)

इच्छा केवल रजकण मे मिल
तव मन्दिर के निकट पड़ूँ,
आते जाते कभी तुम्हारे
श्री-चरणों से लिपट पड़ूँ।

मधुर स्मृति

मधुर स्मृति

(१)

याद मुझे है वह दिन पहले
जिस दिन तुझको प्यार किया,
तेरा स्वागत करने को जब
खोल हृदय का द्वार दिया।

(२)

मन मन्दिर में तुझे बिठा कर
तेरा जब सत्कार किया,
झुक झुक तेरे चरणों का जब
चुम्बन बारम्बार किया।

(३)

स्नेहमयी वह दृष्टि प्रथम ही
थी जिसने तुझको देखा,
याद नहीं है मुझे, तुझे
देखा पहले या प्यार किया !

(४)

हर्षित हो कर क्यों न सराहूँ
बार बार उस दिन के भाग,
जिस दिन तूने प्रेम हमारा
खुले हृदय स्वीकार किया ?

दुखिया का प्यार

दुखिया का प्यार

(१)

"प्रेम का यह अनुपम व्यवहार!
पास न मेरे हैं वे आते,
मुझे न अपने पास बुलाते,
दूर दूर से कहते हैं, करता हूँ तुझको प्यार!!"

× × × × × ×

(२)

"आपदा के ऐसे आगार—
जहाँ किसी को छू हम देते,
घेर उसे दुख सकट लेते!
मिल कर तुझसे क्यों तुझ पर भी डालूँ दुख का भार?

(३)

विरह के दुख सौ नहीं, हजार
सहा करूँ यदि जीवन भर मैं,
तुझे न दुखित बनाऊँ पर मैं,
'तू है सुखी'—यही तो मेरे जीवन का आधार।

(४)

प्रेम का ही तोड़ूँगा तार—
(चाहे मृत्यु भले ही आए)
ज्ञात मुझे यदि यह हो जाए—
दुखी बना सकता है तुझको इस दुखिया का प्यार"।

कलियों से

कलियो से

(१)

अहे ! मैने कलियो के साथ,
जब मेरा चञ्चल बचपन था,
महा निर्दयी मेरा मन था,
अत्याचार अनेक किए थे,
कलियो को दुख दीर्घ दिए थे,
तोड इन्हें बागो से लाता,
छेद् छेद् कर हार बनाता ।
क्रूर काय्य यह कैसे करता !
सोच इसे हूँ आहें भरता ।
कलियो ! तुमसे क्षमा मांगते ये अपराधी हाथ ।

× × × × × ×

जहाँ तनिक-सी तू मुरझाई,
फेंक दी गई, दूर हटाई।
इसी प्रेम से क्या तेरा हो जाता है परितोष?

× × × × × ×

(४)

बदलता पल पल पर ससार,
हृदय विश्व के साथ बदलता,
प्रेम कहाँ फिर लहे अटलता?
इससे केवल यही सोच कर,
लेती हूँ सन्तोष हृदय भर—
मुझको भी था किया किसी ने कभी हृदय से प्यार!

(२)

अहे ! वह मेरे प्रति उपकार !
कुछ दिन मे कुम्हला ही जाती,
गिर कर भूमि समाधि बनाती।
कौन जानता मेरा खिलना ?
कौन, नाज से डुलना हिलना ?
कौन गोद में मुझको लेता ?
कौन प्रेम का परिचय देता ?
मुझे तोड की बडी भलाई,
काम किसी के तो कुछ आई,
बनी रही दो चार घड़ी तो किसी गले का हार।

× × × × × ×

(३)

अहे ! वह क्षणिक प्रेम का जोश !
सरस सुगन्धित थी तू जब तक,
बनी स्नेह भाजन थी तब तक।

जहाँ तनिक-सी तू मुरझाई,
फेंक दी गइ, दूर हटाई।
इसी प्रेम से क्या तेरा हो जाता है परितोष?

× × × × × ×

(४)

बदलता पल पल पर ससार,
हृदय विश्व के साथ बदलता,
प्रेम कहाँ फिर लहे अटलता?
इससे केवल यही सोच कर,
लेती हूँ सन्तोष हृदय भर—
मुझको भी था किया किसी ने कभी हृदय से प्यार!

विरह-विषाद

विरह-विषाद

(१)

चन्द्र ! आते ही मृदुल प्रभात—
भू का रवि जब अञ्चल धरता,
किरण, कुसुम, कलरव से भरता
उसे, बना लेते क्यों अपना मलिन, हीन द्युति गात ?

(२)

निशा रानी का विरह विषाद ?
शोक प्रकट क्यों इतना करते ?
छिपते जाते आहें भरते।
मिलन प्रणयिनी से तो निश्चित एक दिवस के बाद !

(३)

नहीं कुछ सुनते मेरी बात ?
देव ! दुख विरह क्षणिक तुम्हें जब,
इतना होता, बतलाओ अब,
धरें धैर्य्य मानव हम क्यो तब,
हो वियोग जिनका मिलना फिर दूर ? निकट ? अज्ञात !

मूक प्रेम

मूक प्रेम

(१)

हमारी स्नेह मूर्ति ! कुछ बोल ।
भावना के पुष्पों के हार,
गूँध सुकुमार स्नेह के तार,
चढ़ाए मै ने तेरे द्वार,
भाए तुझे, न भाए—कह दे कुछ तो मुँह को खोल ।

(२)

शास्त्र के सिद्ध, सत्य, अनमोल
वचन बतलाते युग प्राचीन
भक्त जब होता भक्ति विलीन,
श्रवण कर उसके सविनय, दीन
वचन, मूक पाषाण मूर्तियाँ भी पडती थीं बोल !

(३)

आ गया हाय ! समय अब कौन ?
हैं सजीव जो मधुर बोलतीं,
बात बात मे अमृत घोलतीं,
सहज हृदय के भाव खोलतीं,
वे भी क्या भावना भक्ति से हो जाएँगी । मौन !

(४)

नयन मे स्नेह भरा, मत मोड
आँख, कर प्रकटित अपना भाव,
भयकर मुझसे अधिक दुराव ।
जानती अकथित प्रेम प्रभाव ?
प्रबल धार यह बाहर आती बाँध हृदय का तोड !

उपहार

उपहार

(१)

जब लेकर के कुछ उपहार

मै तेरे सम्मुख आता हूँ,

मन में कितना शर्माता हूँ !

अरे ! कहाँ ये तुच्छ वस्तुएँ ! कहाँ हमारा प्यार !

(२)

जग के वैभव का भण्डार

एक स्वप्न में मैने पाया,

चरणों मे ला उसे चढ़ाया

तेरे, पर क्या हो पाया सन्तुष्ट हमारा प्यार ?

मेरा धर्म्म

मेरा धर्म्म

(१)

धर्म्म हमारा पूछो प्राण ?—
किसे समझता मै भगवान ?
किसका उठकर करता ध्यान ?
किसे हृदय में अपने देता सब से उच्चस्थान ?

(२)

धर्म्म हमारा पूछो प्राण ?—
किसे समझता प्राणाधार ?
किसकी करता भक्ति अपार ?
समझूँ अन्दर चमक रही है किसकी ज्योति महान ?

(३)

धर्म्म हमारा पूछो प्राण ?—
ईश्वर को मै नहीं जानता,
उसकी सत्ता नहीं मानता,
जिसे न देखा जाना कैसे उसको लेता मान ?

(४)

जगती मे मै अब तक प्राण !
केवल एक प्रेम पहचानूँ,
उसे हृदय का स्वामी मानूँ,
सब कहते भगवान प्रेम है—प्रेम हमे भगवान !

(५)

धर्म्म हमारा पूछो प्राण ?—
कौन शक्ति मेरे तन देता ?
कौन तरी जीवन की खेता ?
कौन हमारा जीव ?—जान कर बनती हो अनजान ?

(६)

नयन करो मत नीचे प्राण !
शक्ति तुम्हीं हो मुझको देती,
तुम्हीं तरी जीवन की खेती,
तुम्हीं जीव हो, प्राण ! हमारी—और तुम्हीं भगवान !!

(७)

"यह कैसे ?"—तुम पूछो प्राण !
ईश-जीव मे भेद नहीं है,
जहाँ जीव है ईश वहाँ है,
'प्रेम' 'प्राण' तुम दोनो मेरी—शकर वचन प्रमाण—

(८)

धर्म्म हमारा पूछो प्राण !
किसको रक्षक अपना कहता,
सदा आसरे जिसके रहता,
करा सरलता से लेने को ईश्वर से पहचान ?

(९)

सौंदर्य्य ने तेरे प्राण !
मुझे प्रेम का पाठ पढ़ाया,
मेरे ईश्वर तक पहुँचाया,
इससे कहूँ उसे मै अपना ईश्वर—दूत सुजान।

(१०)

धर्म्म हमारा पूछो प्राण ?
धर्म्म—ग्रंथ है कौन हमारा ?
शंकाओ मे कौन सहारा ?
ज्ञान बढ़ाऊँ किससे ?—मानूँ किसके वाक्य प्रमाण ?

(११)

तेरे भोले—पन में प्राण !
भरा ज्ञान का सारा सार,
सदा उसी का लूँ आधार,
करता उसका पाठ—वही है मेरा वेद—कुरान।

(१२)

धर्म्म हमारा पूछो प्राण ?—
मेरा कौन पवित्र—स्थान,
शुचिता मुझको करे प्रदान,
जिसकी ओर तीर्थ यात्री बन करता मैं प्रस्थान ?

(१३)

हर्ष हमारा मक्का प्राण !
हम-तुम ने मिल उसे बनाया,
प्रेम वहां पर बसने आया,
नहीं वासना, पाप वहां पर पाते वासस्थान।

(१४)

धर्म्म हमारा पूछो प्राण ?
स्वर्ग कहाँ मै अपना मानूँ ?
प्रेम ! न इसका उत्तर जानूँ,
परे भूमि से लोकों का है कुछ भी मुझे न ज्ञान।

(१५)

अजर, अमर के कभी विचार
नहीं हृदय मे मेरे आए।
पल भर का जीवन कट जाए
इसी तरह बस तुझे गोद मे लेकर करते प्यार !

संकोच

सकोच

(१)

प्रियतम द्वार खड़ी हूँ मौन।
यहाँ भला कब सोचा आना!
मेरा! उनका! दर्शन पाना!
खींच मुझे इतनी दूरी से लाया बरबस कौन?

(२)

बन्द निर्दयी क्यों हैं द्वार!
'मेरे प्यारे'? 'प्रियतम'? 'प्रियवर'?
उन्हें पुकारूँ क्या मै कह कर?
लेकर नाम? पूछती अपने मन से बारम्बार!

(३)

मौन खड़ी, खटकाऊँ द्वार—
अरे ! हाथ खाली ही आई?
देने को उपहार न लाई!
अरी ! करेगी किससे प्रियतम की पूजा सत्कार?

(४)

क्षमा कपट का हो व्यवहार—
यहीं कहीं बैठूँगी छिपकर,
आएँगे, देखूँगी पल भर,
बस लौटूँगी उस पल का हृत्पट पर चित्र उतार।

प्रेम का आरम्भ

प्रेम का आरम्भ

(१)

प्रियतम ! दिवस तुम्हें वह याद ?
नभ में निकल तरैयाँ तारे
छिटक रहे थे प्यारे प्यारे,
हरी डालियो का घर अञ्चल,
पवन हो रहा था कुछ चञ्चल,
कलियों पर झुक रहे कुसुम थे,
वृक्ष तले बैठे हम तुम थे ?
प्रथम प्रेम का जिस दिन तुम पर छाया था उन्माद ?

× × × × ×

(२)

प्रेम ! प्रेम ! उस दिन की याद
नहीं चाहता मुझे दिलाओ,
भूल उसे अब तुम भी जाओ।
वह दिन उनकी याद दिलाता,
जब न तुम्हारा मुझसे नाता।
भुला दिए मैने दिन सारे,
बिना प्रेम जब रहा तुम्हारे।
तब की तो कल्पना हृदय में मेरे भरे विषाद !

(३)

यद्यपि वह दिन था सुकुमार,
पर न मुझे आकर्षित करता,
अब, न भावनाओं से भरता।
गिना दिनो से जाने हारा,
नहीं प्रेम अब रहा हमारा।
आदि, अनन्त प्रेम का कैसा !
मुझको तो अब लगता ऐसा—
तुझे सदा से मै करता था इसी तरह से प्यार !

आत्म-सन्देह

आत्म-सन्देह

(१)

प्राण ! बहुत मै तुझसे दूर !
कभी हृदय से बसने वाली
तुझे समझता मूर्ति निराली।
हाय ! सुदृढ़ विश्वास आज होता वह मुझसे दूर !

(२)

तुझ पर आते कष्ट कलाप,
पर न उन्हें मैं बिल्कुल जानूँ ।
हृदयासीन तुझे पर मानूँ !
हो सकता है इससे भी क्या बढ़कर व्यर्थ प्रलाप?

(३)

इच्छा तो थी मेरी, प्राण !
काँटे से भी कष्ट तुझे हो,
तत्क्षण अनुभव वही मुझे हो,
बड़े बड़े तेरे दुखों का भी पर मुझे न ज्ञान ?

(४)

इच्छा थी तेरा दुख भार
मै अपने ही ऊपर ले लूँ,
सुख अपने सब तुझको दे दूँ,
पर तेरा दुख अल्प हटाने में भी हूँ लाचार।

(५)

कहता तुझसे प्रेम अमान !
किन्तु देख उसकी निर्बलता
हृदय हमारा भरे विकलता,
सन्देह हमारे मन मे उठे महान ।

× × ×

(६)

सुने प्रेमियो के आख्यान—
घाव एक तन में लग जाता
रक्त धार दूसरा बहाता—
सच थे वे, थे या कवियों के बस कालपनिक उड़ान ?

(७)

मौत प्रेम से जाती हार,
किसी एक को लेने आती,
उद्यत उसका प्रेमी पाती,
उसके बदले चलने को—चुप हो करती स्वीकार।

(८)

सत्य कथाओं के आधार
यदि थे वे ता क्यो उनका सा
प्रेम नहीं मै हूँ सकता पा ?
चला गया क्या साथ्र उन्हीं के जग से सच्चा प्यार ?

(१५)

किंतु अभागा मानव-बाल
मुख से हटा हटा कर अञ्चल,
फेर फेर अपने दृग चञ्चल,
लगा देखने रंग बिरंगे जग का रूप विशाल।

(१६)

बालक-वञ्चक, निर्दय, नीच
जग ने उसका चित्त लुभाया,
मूक नयन से उसे बुलाया,
कौतुक ही वह उतर गोद से गया विश्व के बीच।

(१७)

विविध भावना के फल फूल
खा कर उदर लगा निज भरने,
सकल दिशा में लगा विचरने,
गोद खुशी की और प्रेम का दूध गया वह भूल।

(१८)

उस दिन से प्रति दिन अविराम
लगा प्रेम—बल उसका घटने,
प्रेम—तेज मुख पर से हटने,
किन्तु भयंकर इससे भी तो होना था परिणाम।

(१९)

हाय ! वासना मद का पान।
करके मानव बन मतवाला,
विषय कीच से कर मुख काला,
लगा उपेक्षित मातृ दुग्ध का करने अब अपमान !!

(२०)

सदा—हर्षिता माँ को शोक
हो न सका, पर हुआ मलाल,
संपय प्रेम उड़ कर तत्काल
चली गई—बन गया हमारा शुष्क, शून्य यह लोक।

(२१)

गई जहाँ मानव व्यवहार
मे बच्चों का भोलापन था,
निश्छल मन था निर्मल तन था,
सदा सरलता जिनके मुख का करती थी शृङ्गार।

(२२)

गर्व, स्वार्थ का जहाँ अभाव
स्वच्छ हृदयता दिखा रही थी,
जिसे नम्रता सिखा रही थी,
मधुर वचन-जल में नहला कर जल सा नम्र स्वभाव।

(२३)

जहाँ मनुष्यों के आचार
को न प्रलोभन ललचाता था,
और जहाँ पर सुन्दरता का,
निर्मल नयनों ही से होता था स्वागत—सत्कार।

(२४)

सन्तति हित विधि विहित प्रपच
भी न जहाँ मानव आचरता !
शिशु इच्छा जब मन मे करता
सुन्दर शिशु नट-सा आ करता शोभित शशि का मच ।

(२५)

अभिनय करता मन भर मोद,
फिर क्रीडा करते अभिराम,
उतर चन्द्र किरणों को थाम,
पल मे लगता उछल-कूद करने दम्पति की गोद ।

(२६)

वहाँ विषय को सुख आनन्द
नहीं स्वप्न में कोई भूल
कभी समझता, सब सुख मूल
इस पृथ्वी पर समझा जाता, भाग्य हमारे मन्द !!

तम सन्देह ।

(२७)

योग्य प्रेम के वासस्थान
ला कहाँ मिलता इस भू पर ?
सीलिए वह इसे छोड कर
ला गया निज मधुर-स्मृति का हमको छोड़ निशान ।

(२८)

मुझे प्रेम से अब भी प्यार ।
धुर वस्तु होती प्यारी, पर
धुर-स्मृति होती है प्रियतर
वरले प्रेमी अब लेते हैं उसका ही आधार ।

(२९)

स्वप्न प्रेम के जो सुकुमार—
न्हें देखना अब तुम छोड़ो,
र्थ भावना निद्रा तोड़ो ।
हाँ लौट सकता है जग में पहले का सा प्यार !

(३०)

अध पतन मानव का देख
शका ऐसा भय उपजाए—
कहीं न दिन ऐसा भी आए,
हृत्पट से जब मिट जाए स्नेह-स्मृति की भी रेख !!

जन्म-दिवस

जन्म दिवस

आ याद दिलाएँ 'जन्म दिवस' की
हर्ष अनेक अपार तुम्हें।
हो, और, मुबारक जन्म दिवस
प्यारी कविते, सौ बार तुम्हें।
हम दीन बड़े, हम दूर पड़े,
क्या भेंट करें उपहार तुम्हें?
सन्तोष इसी से कर लेना
सौ बार हमारा प्यार तुम्हें।

विदा

विदा

अच्छा कविते ! अब क्षमा प्रार्थना—प्यार—
और विदा ! यात्री के आशीर्वाद
फूलो फलो, आबाद रहो,
राजी रहो, खुश रहो,
फिर मिलेंगे
अच्छा !